International Journal of Multidisciplinary Education and Research
ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12
www.multieducationjournal.com
Volume 1; Issue 4; June 2016; Page No. 37-39

प्राचीन काल की राज-व्यवस्था में दल व उनके कार्य

मधु

जे॰ आर॰ एफ॰, राजनीति विज्ञान, यू॰ जी॰ सी॰, नई दिल्ली, भारत।

सारांश

वर्तमान में प्रायः सभी व्यक्ति इस बात को स्वीकार करते है कि राजनीतिक दलों के बिना प्रजातान्त्रिक शासन का संचालन सम्भव नहीं है। जितना प्राचीन इतिहास लोकतन्त्र का है सम्भवतः उतना ही पुराना इतिहास राजनीतिक दलों का भी है। राजनीतिक दलों की उत्पत्ति लोकतान्त्रिक व्यवस्था के साथ हुई है[1] क्योंकि जब जनता अपने राज्य के लिए राष्ट्राध्यक्ष चुनती है तो अलग–अलग व्यक्ति के विषय में अपना अलग विचार रखती है। किसी भी राष्ट्र की मताधिकार प्राप्त जनता किसी एक व्यक्ति में अपना विश्वास व्यक्त नहीं कर सकती यदि राष्ट्र की सम्पूर्ण जनता किसी एक व्यक्ति में अपना विश्वास व्यक्त करती है तो वहाँ की शासन व्यवस्था लोकतनत्रात्मक नहीं बल्कि राजतन्त्रात्मक होगी और एक व्यक्ति के पक्ष में अपना मत व्यक्त करना जनता का अपना स्वविवेक नहीं बल्कि राष्ट्राध्यक्ष का डर होगा। इसलिए वह शासन लोकतन्त्र के बाहर राजतन्त्र या निरंकुश तन्त्र शासन की श्रेणी में आयेगा ऐसे में राजनीतिक दलों की कोई भूमिका नहीं है। परन्तु जब व्यक्ति को अपने मत का उपयोग स्वविवेक से करना होता है तब वह राजव्यवस्था लोकतन्त्रात्मक होती है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति स्वतन्त्र होता है कि वह अपना प्रतिनिधि चुनने के लिए किसी व्यक्ति में अपना विचार व्यक्त करता है जब मतदाता अलग–अलग व्यक्तियों में अपना विश्वास व्यक्त करता है तो विभिन्न प्रकार के व्यक्ति संगठित हो एक दल के रूप में आ जाते हैं यही व्यक्तियों का संगठन राजनीतिक दल का स्वरूप लेकर आज लोकतन्त्र को मजबूती प्रदान कर रहा है।

मूल शब्दः प्राचीन काल, लोकतान्त्रिक शासन, राजनीतिक दल, प्रभुत्व

प्रस्तावना

इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में, जब–जब जनता ने अपने स्वविवेक से प्रतिनिधि का चयन किया तो वह राज व्यवस्था लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था कहलायी इस अवस्था से धीरे–धीरे राजनीतिक दलों की उत्पत्ति हुई क्योंकि मूर्त या अमूर्त दोनों ही रूप से राजनीतिक दलों ने विचारधारा के रूप में कार्य किया। लोकतन्त्र में सरकार गौण है और जबकि जनशक्ति प्राथमिक। अगर सरकार बाल्टी के समान है तो जनता कुँऐं के समान है। [2] जैसा कि राजनीतिक शब्द से ही राजनीतिक दलों का आभास होता है और यह स्पष्ट होता है कि प्रजातान्त्रिक शब्द से ही राजनीतिक दल अति आवश्यक हैं। प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों की अनिवार्यता को देखते हुए ही राजनीतिक दलों को लोकतन्त्र का प्रमाण व सरकार का चतुर्थ स्तम्भ कहा गया है क्योंकि बिना राजनीतिक दलों के प्रजातान्त्रिक व्यवस्था सम्भव नहीं हो सकती। [3] अतः जिस शासन में राजनीतिक दलों का अभाव हो चाहे वह राज्य कितना ही लोक कल्याणकारी क्यों न हो। उसे लोकतान्त्रिक व्यवस्था (जनता का शासन) नहीं कह सकते। यह नहीं कहा जा सकता किस प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था कोई नयी व्यवस्था है और राजनीतिक दलों की उत्पत्ति कोई नवीन प्रक्रिया है उसकी कार्य प्रणाली वर्तमान व्यवस्था की देन है। प्राचीनकाल के स्रोतों से प्रजातन्त्र शासन के पद चिन्ह मिलते हैं। प्राचीन विचारधाराओं से यह भी स्पष्ट होता है कि उस काल में भी प्रजातन्त्र शासन का अस्तित्व रहा है। ईसा से 422 साल पूर्व यूनानी दार्शनिक *वलीआँन* ने लोकतान्त्रिक शासन को परिभाषित किया जिससे प्रेरित होकर अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन द्वारा लोकतन्त्र शासन को अच्छा माना गया। सन् 1863 में गेटिसवर्ग में लिंकन से वालीआन की परिभाषा को दुहराया और कहा कि लोकतन्त्र जनता का जनता के लिए जनता द्वारा शासन है। रूसों अपने ''सामान्य समझौता'' सिद्धान्त में व्यक्त करता है कि राज्य की उत्पत्ति जनता के जन समूह द्वारा हुई। जनता ने राजनीतिक संगठन का निर्माण किया और वास्तविक शक्ति जनता के ही हाथ में रही है क्योंकि जनता ने बहुमत के आधार पर ही शासक को चुना अतः प्राचीन काल में दलों का स्वरूप व दलों के कार्य जानने से पूर्व प्राचीनतम प्रजातन्त्र का अध्ययन करना समयाचीन रहा क्योंकि जब तक हम प्राचीनकाल की प्रजातन्त्र व्यवस्था को नहीं समझ पाते तब तक प्राचीनकाल की दलीय व्यवस्था को नहीं समझा जा सकता है।

मेसोपोटामिया की सभ्यता में भी प्रजातन्त्र के चिन्ह मिलते है, इससे ज्ञात होता है कि राज्य की सत्ता नगरवासियों के ही हाथ में थी इसके लिए प्रत्येक नगर में नागरिकों की एक संसद थी इसके दो सदन थे। एक सदन में नगर के प्रायः सभी वयस्क पुरूष सदस्य होते थे परन्तु दूसरे सदन की सदस्यता कुछ अनुभवी लोगों तक ही सीमित थी शासन कार्यो में राजा को इन सभाओं से परामर्श लेना पड़ता था। [4] पूर्व वैदिक काल में भी राजा का चुनाव जनता करती थी। महाजनपद काल में भी प्रजातन्त्र शासन प्रणाली का प्रचलन था, राज्य में एक नायक का पद होता था। जिसका चयन प्रजा द्वारा किया जाता था जो गणराज्य का प्रधान होता था। शासन सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार विमर्श करने के लिए एक सभा थी जिसे संस्थागार कहते थे सभा में विचाराधीन विषयों पर प्रत्येक सदस्य अपना विचार व्यक्त करता था। प्रस्ताव के पक्ष में होने वाले सदस्य मौन रहते थे तथा विपक्षीय सदस्य भाषण देते थे। मतदान के लिए शलाका का प्रयोग किया जाता था। राजा सेनापति तथा अन्य पदाधिकारियों की नियुक्ति संस्थागार द्वारा होती थी। [5] कोई भी काल अथवा समय रहा हो जब भी जनता ने अपना नेता स्वविवेक से चुना तब राजनीतिक दलों का प्रभाव भले ही आज की तरह न हो परन्तु गुटबाजी स्पष्ट रूप से अवश्य सामने आयी। यूनान में अधिकतर राज्यों में धनिकों के अत्याधिक शोषण के कारण निर्धन, किसान, व्यापारी, भूमिहीन किसानों ने मिलकर कुलीनतन्त्र के विरूद्ध संघर्ष किया जिससे अधिकतर राज्यों में लोकतन्त्र स्थापित हो गया था। 469 ईसा पूर्व से 429 ईसा पूर्व में

पेरिक्लीज के नेतृत्व में एथेन्स उन्नति के शिखर पर पहुँच गया वहाँ विधानसभा द्वारा दस जनरलों का चुनाव किया जाता था। जो आजकल के मन्त्रिमण्डल के समान शासन चलाते थे। यह सभी विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होते थे। वहाँ ज्यूरी द्वारा मुकदमों का फैसला होता था। ज्यूरी के सदस्य सभी वर्गो के नागरिकों में से लॉटरी द्वारा चुने जाते थे। [6]

आज का प्रजातन्त्र जनता को प्रत्यक्ष रूप से शासन में भाग लेने का अवसर प्रदान करता है जबकि प्राचीन प्रजातन्त्र में ऐसे अवसर प्राप्त नहीं थे [7] क्योंकि उस काल में प्रजातन्त्र बीज के रूप में था आज वही अंकुरित होकर वृक्ष के रूप में पोषित हो गया है जिसको विभिन्न राजनीतिक दल सींचकर जीवन्ता प्रदान कर रहे हैं प्राचीन काल में प्रजातन्त्र शासन तो था परन्तु आज की भाँति राजनीतिक दल नहीं थे बल्कि गुटों द्वारा ही प्रजातन्त्र शासन को सफल रूप में संचालित किया जाता था अतः राजनीतिक दल प्राचीन काल में गुप्त रूप से कार्य करते थे जिस प्रकार प्रजातन्त्र बीज के रूप में था उसी प्रकार राजनीतिक दल भी बीज के रूप में थे जो आज अंकुरित हो वृक्ष रूप में आ गये हैं। सुमेर के प्रजातान्त्रिक आदिम नगर में सत्ता सुमेर के नागरिकों के हाथों में थी प्रत्येक नगर में नागरिकों को एक संसद होती थी, जिसके दो सदन होते थे। एक सदन में राज्य के समस्त वयस्क पुरूष सदन के सदस्य होते थे तथा दूसरे सदन में राज्य के श्रेष्ठ तथा अनुभवी व्यक्ति होते थे जिनकी सदस्य संख्या सीमित होती थी। गिल्गामेश आख्यान में भी इसकी पुष्टि होती है गिल्गामेश की राजधानी ऐरक में दो सदन थे लोकसभा तथा सीनेट, जिनसे गिल्गामेश परामर्श लेता था तथा ऐसे तथ्य भी मिलते हैं कि गिल्गामेश ने सदन की बिना स्वीकृति के कोई निर्णय लिया हो एक बार किया के शासक अग्गा ने गिल्गामेश के लिए किश के प्रभुत्व को स्वीकार करने के लिए सन्देश भेजा तो गिल्गामेश ने इस सन्देश को राज्य के श्रेष्ठ व्यक्तियों के सामने रखा तथा अन्त में वही निर्णय गिल्गामेश ने लिया जिसको नगर के श्रेष्ठ व्यक्तियों ने अपनी सहमति से स्वीकार किया इस प्रकार के तथ्यों से प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के पद चिन्ह मिलते है। [8] जनतन्त्र का अस्तित्व प्राचीन काल के साहित्य में दर्पण की भाँति दिखाई पड़ता है वैदिक काल इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। [9]

बहुधा विद्वान प्रजातन्त्रात्मक भावना की उत्पत्ति का इतिहास यूनान के नगर राज्यों को मानते हैं क्योंकि विश्व में प्रजातन्त्र की भावना का विकास यहीं से मानते हैं क्योंकि यहीं से इस भावना का प्रचार व यूनानी नागरिक जीवन के दर्शन के साथ प्रजातन्त्र की भावना का जन्म हुआ जिसको प्रस्फुटित करने का श्रेय सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तु को विशेष रूप से दिया जाता हैं इन्हें विद्वान आधुनिक प्रजातन्त्र का जन्मदाता मानते हैं। [10] प्राचीनकाल में आज की भाँति प्रस्ताव भी पास होते थे जिनमें मतभेद तथा विवाद भी उत्पन्न होते थे कभी–कभी ऐसे अवसरों पर अर्थहीन भाषण भी दिये जाते थे। राजनीतिक संघों में यह वाद–विवाद कटुता का रूप धारण का लेता था इस कटुता के कारण सभा में विरोधी राजनीतिक दलों की उपस्थिति होती थी। वाद–विवाद द्वारा यह दल तक दूसरे का पराभव का सत्ता प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते थे। अन्धक वृष्णि संघ की सभा में आहुक तथा अक्रूर ऐसे ही दलों के नेता थे तथा ऐसे प्रभावशाली थे कि उनका सम्मान और विरोध दोनों ही दुःखदायी था। सभा में ऐसी दलबन्दी की उपस्थिति उनकी कटु आलोचनाओं से बहुधा गणमुख्य की स्थिति शोचनीय हो जाती थी दो जुआरियों की माता के समान वह न तो किसी के विजय होने की कामना कर सकता था और न किसी के पराजय की। [11] उसे विवश हा कटु भाषण सुनना पड़ता और कटु भाषण की अग्नि से उसे नित्य लकड़ी की भाँति जलते रहना पड़ता था। पाणिनिकालीन अन्धक वृष्णि सम्बन्धी इन उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन प्रजातन्त्र राज्यों में आज के समान ही दलबन्दी चलती रहती थी और सदस्य आलोचना– प्रत्यालोचना करते रहते थे। [12] किसी भी राष्ट्र अथवा काल में उत्पन्न राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व धार्मिक समस्याओं के समाधान के सम्बन्ध में विभिन्न लोगों के अलग–अलग विचार होते हैं यही विचारों की भिन्नता लोगों का अलग–अलग गुटों में विभाजित कर देती हैं और यही विभाजित गुट ही राजनीतिक दलों का निर्माण करते है।

संघ एक अथवा कुछ व्यक्तियों की सम्पत्ति न होकर समाज में रहने वाले सभी व्यक्तियों की सम्पत्ति होता है। [13] व्यक्ति में स्वभाव से ही स्वार्थी, लोभी तथा ईर्ष्या जैसे दुर्गुण होते है। इन्हीं दुर्गुणों के आधार पर आदिम काल में व्यक्ति के अन्दर तेरे–मेरे कीं भावना ने जन्म लिया तथा प्रेम–भाव से रहने वाला व्यक्ति इन दुर्गुणों के आधार पर लालची बन बैठा क्योंकि व्यक्ति में इन दुर्गुणों पर विजय प्राप्त करने का भी अभाव रहा जिससे प्रतियोगिता की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई इस प्रतियोगिता ने राज्य में गुटों को जन्म दिया और इन्हीं गुटों से राजनीतिक दलों की उत्पत्ति हुई चूँकि जब नेतृत्व के लिए एक से दो या तीन व्यक्ति पर प्रभाव के ही होते हैं तब समस्या पैदा हुई कि नेता कैसे चुना जाए जिसके लिए या तो संघर्ष की उत्पत्ति हुई जिससे शासन सत्ता शक्तिशाली व्यक्ति के हाथ में केन्द्रित हो गयी तब राजतन्त्र का जन्म हुआ। परन्तु यदि सम्प्रभु को चुनने की शक्ति जनता के हाथ में आयी है तो वह शासन व्यवस्था जनतांन्त्रिक व्यवस्था कहलायी है इस लोकतांन्त्रिक व्यवस्था में गुटबन्दी उत्पन्न हुई और था इस गुटबन्दी से राजनीतिक दलों की उत्पत्ति हुई। इन्हीं संघर्षों से राजनीतिक दलों का जन्म हुआ और इनमें राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति के लिए आलोचना–प्रत्यालोचना का होना भी स्वाभाविक सा हो गया और संघ के हित का स्थान दलीय स्वार्थ हितों ने प्राप्त कर लिये अन्धक वृष्णि संघ इसके संघर्षों का प्रमाण है। [14]

इस्लामी सिद्धान्तों में भी यह देखने में आया कि जनता को अपने राजा को चुनने का अधिकार था क्योकि प्रारम्भ में खलीफा का चुनाव जनता की सर्वसम्मति से होता था। इस प्रकार इस्लामी राज्य में राज्यसत्ता जनता में निहित थी जिसे मिल्लत के नाम से जाना जाता था तथा मिल्लत का नेता जनता ही चुनती थी। [15] इस प्रकार निर्वाचन प्रणाली प्राचीन काल से ही चली आ रही है हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई तथ अन्य प्राचीन धर्मो के स्रोतों से यह इंगित प्रतीत होता है कि प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था आज तक चली आ रही है। भारत में हिन्दू काल, मुस्लिम काल व ब्रिटिश काल में भी कहीं न कहीं चुनाव की प्रक्रिया अपनाई गई है। यदि सल्तनतकाल में अमीरों का यह एक समूह या जो सुल्तान को परामर्श देता था अतः वही अमीर समूह सुल्तान किसी एक व्यक्ति का समर्थन कर उसे शासन घोषित कर देते थे वहीं जनता द्वारा निर्वाचित शासन मान लिया जाता था परन्तु शासक पहले ही शक्ति द्वारा अपनी विजय सुनिश्चित कर देता था। अमीरों के समूह से केवल अपनी स्थिति को वैधानिक बनाता था। [16] ब्रिटिशकाल में यदि जनता के संघर्ष के कारण चुनाव प्रक्रिया अपनाई गई जिसमें जनता को निर्वाचन का अधिकार मिला।

मैने यह अनुभव किया कि सर्वप्रथम लोकतान्त्रिक व्यवस्था ही मानव सभ्यता में आई इसी से राजतन्त्र, निरंकुशतन्त्र एवं धनिकतन्त्र का निर्माण हुआ। प्राचीन भारत में विभिन्न शासन प्रणालियाँ तथा राजनीतिक संस्थाओं के सामान्य अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारत में राजनीतिक चेतना पूर्णता विद्यमान थी। उस काल में लोगों को अपने उत्तरदायित्व तथा अधिकारों का पूर्ण ज्ञान था और वह राज्य तथा राजा को शासक के रूप में नहीं वरन् देश में शान्ति व्यवस्था की स्थापना द्वारा प्रजा को सुखी सेवक के रूप

में स्वीकार करते थे। निरंकुश, लोभी तथा मूर्ख शासक का भारतीय राजनीति में कोई स्थान नहीं था। [17] वैदिक काल में समाज वर्ग व्यवस्था पर आधारित था। समाज, परिवार, गोत्र, कुल, ग्राम व जाति के नाम से जाने जाते थे। [18] कार्ल–मार्क्स सामाजिक परिवर्तन का मुख्य साधन आदिकाल से लेकर आज तक किसी के समस्त सामाजिक परिवर्तन को वर्ग संघर्ष मानता है। प्राचीनकाल में आज की भाँति राजनीति नहीं थी न ही आज की भाँति राजनीतिक दल थे परन्तु राजनीति वर्ग के आधार पर की जाती थी यदि पुरोहित ब्राह्मण का प्रतिनिधित्व करते थे तो पागल शूद्र जाति का प्रतिनिधित्व करता था। जाति से चुना व्यक्ति ही प्रतिनिधि राजा का निर्माण करता था। [19] इसलिए जनता अप्रत्यक्ष रूप से अपने प्रतिनिधियों के माध्यम द्वारा भाग लेती थी। इसकी पुष्टि राज्याभिषेक की कुछ प्रथाओं से भी होती है क्योंकि राजा को रत्नियों के घर जाकर रत्नहवि प्रदान करना पड़ता था जिसकी सूची शपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण तथ तैत्तिरीय संहिता से मिलती है। [20]

अगर कोई यह कहे कि प्राचीनकाल में प्रजातन्त्र सरकार तो थी लेकिन राजनीतिक दल नहीं थी तो यह कहना सही नही माना जा सकता क्योंकि प्रजातन्त्र सरकार बिना राजनीतिक दलों के नहीं चलाई जा सकती है और उस सरकार को प्रजातन्त्रात्मक सरकार नहीं कह सकते जिसमें राजनीतिक दल न हो। अमेरिकी संविधान निर्माताओं का मत था कि राजनीतिक दल जनता में द्वेष और बैर की भावना पैदा करते हैं जिससे अमरीकी प्रजातान्त्रिक राष्ट्र को खतरा उत्पन्नता की सम्भावना बढ़ेगी संविधान सभा में मेडिसन ने राजनीतिक दलों की तीव्र भर्त्सना की परन्तु जार्ज वाशिंगटन नायक अमरीकी राष्ट्रपति के भाषणों के बाद भी अमरीकी राजनीतिक दलों के उद्भव एवं विकास को नहीं रोक पाए। आज का युग प्रजातान्त्रिक युग है तथा वर्तमान राजनीतिक भी इसी प्रजातन्त्रात्मक पद्धति पर आधारित है। संविधान जिस आत्मा की ज्योति से ज्योर्तिमय है वह प्रजातन्त्र का सिद्धान्त ही है प्रजातान्त्रिक शासन को विद्वान यूनानी सभ्यता से मानते है, विभिन्न विद्वानों के सिद्धान्तों का अध्ययन करने से पता चलता है कि आदिकाल से ही प्रजातान्त्रिक व्यवस्था रही होगी। इस प्रकार राजनीतिक दलों की उत्पत्ति व प्राचीनकाल में दलों की स्थिति व कार्यो के सम्बन्ध में व्यक्त किया जो कि प्राचीनकाल में दल वर्ग अथवा गुटों के रूप में कार्य करते थे जैसे–जैसे प्रजातन्त्रात्मक शासन में सुधार होता गया दलों की स्थिति निखर कर सामने आती गई। भारत में जनतन्त्र लुप्त हो गया अर्थात् जनतन्त्र, राजतन्त्र में परिवर्तित हो गया आज का लोकतन्त्र हमारे सामने नवीन रूप में खड़ा है जो राजतन्त्र की समाप्ति पर सामने आया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. तिवारी, धीरेन्द्र कुमार : इन्दिरा गाँधी का भारतीय राजनीति में योगदान, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, दिल्ली, 1983, पृ0 सं0–18।
2. भावे, विनोवा : इलैक्शन एण्ड डेमोक्रेसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष 1971, पृ0 सं0–18।
3. जैन,डॉ0 पुखराज, बाबू लाल फड़िया : भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, वर्ष 2008, पृ0 सं0–367।
4. गोपाल, श्रीराम : विश्व की प्राचीन सभ्यतायें, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष, पृ0 सं0 35।
5. तदैव, : पृ0 सं0–266।
6. तदैव, : पृ0 सं0–35।
7. कपूर, यदुनन्दन : धर्मनिरपेक्ष भारत की प्रजातन्त्रात्मक परम्परायें, लक्ष्मी नरायन अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, वर्ष 1958, पृ0 सं0–01।
8. गोपाल, श्रीराम : विश्व की प्राचीन सभ्यतायें, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष 1969, पृ0 सं0–49।
9. शुक्ल, देवीदत्त : प्राचीन भारत में जनतन्त्र, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0प्र0 लखनऊ, वर्ष 1966, पृ0 सं0–05।
10. कपूर यदुनन्दन : धर्मनिरपेक्ष भारत की प्रजातन्त्रात्मक परम्परायें, लक्ष्मी नरायन अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, वर्ष 1958, पृ0 सं0–44।
11. शर्मा, रामशरण : प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थायें, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, वर्ष 1990, पृ0 सं0–169।
12. कपूर यदुनन्दन : धर्मनिरपेक्ष भारत की प्रजातन्त्रात्मक परम्परायें, लक्ष्मी नरायन अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, वर्ष–1958, पृ0 सं0–177/178।
13. शुक्ल, देवीदत्त : प्राचीन भारत में जनतन्त्र, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0प्र0 लखनऊ, वर्ष 1966, पृ0 सं0–122/123।
14. कपूर, यदुनन्दन : धर्मनिरपेक्ष भारत की प्रजातन्त्रात्मक परम्परायें, लक्ष्मी नरायन अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, वर्ष 1958, पृ0 सं0–181।
15. श्रीवास्तव, हरिशंकर : मुगल शासन प्रणाली, वोहरा पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, वर्ष 1978, पृ0 सं0–02।
16. सक्सेना, आर0के0 : दिल्ली सल्तनतः पंचशील प्रकाशन जयपुर, 1966, पृ0 सं0–366।
17. शुक्ल, देवीदत्त : प्राचीन भारत में जनतन्त्र, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0प्र0 लखनऊ, वर्ष 1966, पृ0 सं0–35।
18. शर्मा, रामशरण : प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थायें, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, वर्ष 1990, पृ0 सं0–56।
19. शुक्ल, देवीदत्त : प्राचीन भारत में जनतन्त्र, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0प्र0 लखनऊ, वर्ष 1966, पृ0 सं0–66।
20. कपूर, यदुनन्दन : धर्मनिरपेक्ष भारत की प्रजातन्त्रात्मक परम्परायें, लक्ष्मी नरायन अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, वर्ष 1958, पृ0 सं0–169।